

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 10 अध्याय 64 — राजा नृग का उद्धार

5 October 2026



एक सूखे कुएँ की तलहटी में पर्वत-सा विशाल गिरगिट पड़ा है; श्रीकृष्ण के हाथ के एक स्पर्श से वह तेजस्वी राजा बनकर उठ खड़ा होता है, और एक गौ के दो बार दान हो जाने की उसकी कथा सारी द्वारका को सिखाती है कि ब्राह्मण का धन कभी छुआ नहीं जाता।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में पुनः स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की हमारी भक्तिमयी यात्रा। दशम स्कन्ध के इस चौंसठवें अध्याय में यदुवंशी राजकुमार एक कुएँ में विचित्र प्राणी पाते हैं, और उसी के मुख से हम सुनते हैं कि एक परम दानी राजा एक अनजाने दोष से कैसे गिरा — और श्रीकृष्ण उसे कैसे उठाते हैं।

अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 10 (दशम स्कन्ध, उत्तरार्ध)
- अध्याय: 64 (चतुःषष्टितम अध्याय)

- अध्याय शीर्षक: राजा नृग का उद्धार
- मुख्य वक्ता: श्री शुकदेव गोस्वामी; कथा के भीतर राजा नृग और भगवान श्रीकृष्ण
- मुख्य श्रोता: राजा परीक्षित; कथा के भीतर भगवान श्रीकृष्ण और यदुवंशी
- मुख्य स्थल: द्वारका के समीप उपवन और सूखा कुआँ; फिर नगरी
- केंद्रीय विषय: गिरगिट-देह से मुक्त राजा नृग एक गौ के दो बार दान से हुए अपने पतन की कथा कहते हैं; ब्राह्मण-धन की पवित्रता पर श्रीकृष्ण का उपदेश
- मुख्य श्लोक-सीमा: स्कन्ध 10, अध्याय 64, श्लोक 1-44
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण (दशम स्कन्ध, उत्तरार्ध)

पूर्व अध्याय का संदर्भ

त्रेसठवें अध्याय में श्रीकृष्ण ने बाणासुर और भगवान शिव से युद्ध किया, असुर की अनेक भुजाएँ काटीं और शिवजी की प्रार्थना पर उसके प्राण छोड़ दिए; फिर अनिरुद्ध और वधू ऊषा को द्वारका ले आए। हमारा अध्याय उसी नगरी के एक शान्त दिन से आरम्भ होता है।

सूखे कुएँ पर राजकुमार

श्री शुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कथा आगे बढ़ाई। एक दिन साम्ब, प्रद्युम्न, चारु, भानु, गद और अन्य यदुवंशी राजकुमार उपवन में खेलने गए। देर तक खेलकर उन्हें प्यास लगी और वे एक कुएँ के पास पहुँचे। कुआँ सूखा था; किन्तु उसकी तलहटी में एक ऐसा प्राणी पड़ा था जिसे देखकर वे विस्मय से ठिठक गए — पर्वत-सा विशाल एक गिरगिट।

दया से भरकर उन्होंने उसे चमड़े की रस्सियों और रेशों की डोरियों से बाँधा और ऊपर खींचने का यत्न किया, पर हिला न सके। कौतूहल से भरे वे दौड़कर श्रीकृष्ण के पास गए और सब कह सुनाया।



खेल के बाद प्यासे यदुवंशी राजकुमारों को एक सूखा कुआँ मिलता है — और उसकी तलहटी में पर्वत-सा विशाल गिरगिट, जिसे उनकी सारी रस्सियाँ और प्रयत्न हिला नहीं पाते।

प्रभु के हाथ का स्पर्श

कमलनयन भगवान, जगत् के सर्वशक्तिमान पालक, कुएँ पर आए, उस प्राणी को देखा और खेल-खेल में अपने बाएँ हाथ से उसे बाहर निकाल लिया। उनके स्पर्श होते ही गिरगिट की देह झड़ गई और उसके स्थान पर एक दीप्तिमान दिव्य पुरुष खड़ा हो गया।

स उत्तमश्लोककराभिमृष्टो विहाय सद्यः कृकलासरूपम् ।

सन्तप्तचामीकरचारुवर्णः स्वर्ग्यद्भुतालङ्करणाम्बरस्रक् ॥ ६ ॥

*sa uttama-śloka-karābhimṛṣṭo vihāya sadyaḥ kṛkalāsa-rūpam santapta-cāmikara-cāru-varṇaḥ
svargy adbhutālaṅkaraṇāmbara-srak*

अर्थ: पुण्यकीर्ति भगवान के हाथ का स्पर्श पाते ही उसने तत्काल गिरगिट का शरीर त्याग दिया और तपाए हुए सोने-सी सुन्दर कान्ति वाला, अद्भुत आभूषणों, वस्त्रों और मालाओं से सुसज्जित एक स्वर्गीय पुरुष बन गया। (स्कन्ध 10, अध्याय 64, श्लोक 6)

मुक्ति देने वाले श्रीकृष्ण भली-भाँति जानते थे कि इस जीव ने गिरगिट का रूप क्यों पाया। फिर भी, लोगों को ज्ञात कराने के लिए उन्होंने पूछा, 'हे महाभाग, तुम कौन हो? निश्चय ही तुम देवताओं में से कोई हो। किस कर्म से तुम ऐसी दशा को पहुँचे, जिसके तुम योग्य न थे? यदि उचित समझो तो हमें अपना वृत्तान्त सुनाओ।'।

राजा नृग का परिचय

अनन्तमूर्ति प्रभु के इस प्रकार पूछने पर उस राजा ने, जिसका मुकुट सूर्य-सा दमक रहा था, लक्ष्मीपति को प्रणाम किया और कहा।

नृगो नाम नरेन्द्रोऽहमिक्ष्वाकुतनयः प्रभो ।

दानिष्वाख्यायमानेषु यदि ते कर्णमस्पृशम् ॥ १० ॥

nṛgo nāma narendro 'ham ikṣvāku-tanayaḥ prabho dāniṣv ākhyāyamāneṣu yadi te karṇam aspṛśam

अर्थ: नृग ने कहा: हे प्रभो, मैं इक्ष्वाकु का पुत्र नृग नामक राजा हूँ। यदि कभी आपके सामने दानियों की गणना हुई हो, तो शायद मेरा नाम आपके कानों तक पहुँचा हो। (स्कन्ध 10, अध्याय 64, श्लोक 10)

उन्होंने जोड़ा कि सब प्राणियों के मन के साक्षी से, जिनकी दृष्टि को काल भी नहीं रोक सकता, कुछ छिपा नहीं है; फिर भी प्रभु की आज्ञा से वे अपनी कथा कहेंगे।

दान का एक जीवन

नृग ने ब्राह्मणों को उतनी गौएँ दी थीं जितने पृथ्वी पर बालू के कण, आकाश में तारे, वर्षा की बूँदें — दुधारू, युवा, सुशील, कपिला, उत्तम नस्ल की, हर एक बछड़े सहित, हर एक न्याय से अर्जित धन से खरीदी हुई, सींग सोने से और खुर चाँदी से मढ़े हुए, रेशम, मालाओं और आभूषणों से सजी हुई।

और उन्होंने दान असावधानी से नहीं दिया। वे शील-गुण-सम्पन्न, समदर्शी, अभावग्रस्त कुलों के युवा ब्राह्मणों को चुनते — सत्यनिष्ठ, तपस्वी, वेद-विद्या देने में उदार — और गौ देने से पहले उन्हें वस्त्रों से सम्मानित करते। उन्होंने भूमि, स्वर्ण, घर, घोड़े, हाथी, चाँदी, तिल, शय्याएँ, वस्त्र, रत्न, गृहस्थी की वस्तुएँ और रथ भी दिए; यज्ञ किए और लोकहित के कार्य करवाए।

एक गौ, दो बार दान

तब वह दोष हुआ। एक तपस्वी, दान न लेने वाले ब्राह्मण की गौ भटककर राजा के झुंड में मिल गई। यह न जानते हुए नृग ने उसे दूसरे ब्राह्मण को दान कर दिया। जब नया स्वामी उसे ले जा रहा था, पहले ब्राह्मण ने उसे देखा और कहा, 'यह मेरी है!' दूसरे ने उत्तर दिया, 'नहीं, यह मेरी है — राजा नृग ने मुझे दी है।'



राजकीय झुंड में भटक आई एक गौ दूसरे ब्राह्मण को दान हो जाती है; उसका वास्तविक स्वामी और पाने वाला दोनों किंकर्तव्यविमूढ़ राजा के सामने उस पर अधिकार जताते हैं, और कोई भी बदले में एक लाख गौएँ स्वीकार नहीं करता।

दोनों अपना विवाद राजा के पास ले आए। एक ने कहा, 'आपने यह मुझे दी है।' दूसरे ने कहा, 'यदि ऐसा है तो आपने मेरी गौ चुराई है।' किंकर्तव्यविमूढ़ नृप ने दोनों से विनती की, 'मैं इसके बदले एक लाख उत्तम गौएँ दूँगा; बस यह एक मुझे दे दीजिए। मैं आपका सेवक हूँ। अनजाने में हुए इस अपराध को क्षमा कीजिए और मुझे इस संकट से बचाइए, जो मुझे घोर नरक में गिरा देगा।'

कोई न माना। गौ के स्वामी ने कहा कि वे बदले में कुछ भी नहीं लेंगे, और चले गए। दूसरे ने कहा कि वे इसके बदले दस हजार गौएँ भी नहीं लेंगे, और वे भी चले गए। बात वहीं अधूरी रह गई — और राजा की आयु पूरी हो गई।

यमराज के दरबार में

यमदूत मृत राजा को धर्मराज के पास ले गए, और यम ने उनसे पूछा, 'हे राजन्, तुम पहले अपने पाप का फल भोगोगे या पहले पुण्य का? तुम्हारे दानों का और उनसे मिलने वाले तेजोमय लोकों का मुझे कोई अन्त नहीं दिखता।'



यम के दरबार में नृग से पूछा जाता है कि वे पहले अपने एक पाप का फल भोगेंगे या अपार पुण्य का; वे पाप चुनते हैं, और यम कहते हैं, 'गिरो।'

नृग ने उत्तर दिया, 'हे देव, पहले मैं अपने पाप का फल भोगूँ।' उसी क्षण यम ने कहा, 'गिरो।' और वहाँ से गिरते ही राजा ने स्वयं को गिरगिट पाया, और इस प्रकार वे इतने लम्बे समय तक उस अँधेरे कुएँ में पड़े रहे।

भक्ति ने स्मृति बचाई

फिर भी एक वस्तु उनसे छिनी न गई: उस नीच योनि के इन सब वर्षों में भी वे कौन थे, इसकी स्मृति उनसे कभी नहीं गई।

ब्रह्मण्यस्य वदान्यस्य तव दासस्य केशव ।

स्मृतिर्नाद्यापि विध्वस्ता भवत्सन्दर्शनार्थिनः ॥ २५ ॥

brahmaṇyasya vadānyasya tava dāsasya keśava smṛtir nādyāpi vidhvastā bhavat-sandarśanārthinaḥ

अर्थ: हे केशव, मैं ब्राह्मणों का भक्त, दानशील और आपका दास था, और आपके साक्षात् दर्शन की लालसा रखता था — इसीलिए आज भी मेरी स्मृति नष्ट नहीं हुई है। (स्कन्ध 10, अध्याय 64, श्लोक 25)

और वे विस्मित हुए। जिन प्रभु को योगेश्वर उपनिषदों की दृष्टि से अपने शुद्ध हृदय में देखते हैं, जो इन्द्रियों से परे हैं — वे अनेक दुःखों से आच्छन्न बुद्धि वाले इस जीव की दृष्टि में कैसे आ गए? नृग उत्तर जानते थे: प्रभु उसी को दिखाई देते हैं जिसकी जन्म-मरण से मुक्ति निकट हो।

नृग की विदाई-प्रार्थना

तब राजा ने प्रभु को उनके पावन नामों से पुकारते हुए प्रार्थना की।

देवदेव जगन्नाथ गोविन्द पुरुषोत्तम ।

नारायण हृषीकेश पुण्यश्लोकाच्युताव्यय ॥ २७ ॥

अनुजानीहि मां कृष्ण यान्तं देवगतिं प्रभो ।

यत्र क्वापि सतश्चेतो भूयान्मे त्वत्पदास्पदम् ॥ २८ ॥

*deva-deva jagan-nātha govinda puruṣottama nārāyaṇa hr̥ṣīkeśa puṇya-ślokācyutāvyaya
anujānīhi mām kṛṣṇa yāntaṁ deva-gatiṁ prabho yatra kvāpi sataś ceto bhūyān me tvat-
padāspadam*

अर्थ: हे देवदेव, हे जगन्नाथ, हे गोविन्द, हे पुरुषोत्तम, हे नारायण, हे हृषीकेश, हे पुण्यकीर्ति, हे अच्युत, हे अव्यय — हे कृष्ण, हे प्रभो, देवलोक को जाते हुए मुझे आज्ञा दीजिए; और मैं जहाँ कहीं भी रहूँ, मेरा मन सदा आपके चरणों में ही लगा रहे। (स्कन्ध 10, अध्याय 64, श्लोक 27–28)

उन्होंने सबके रचयिता, अनन्त शक्ति वाले अविकारी प्रभु को, कृष्ण को, सब प्राणियों के आश्रय वासुदेव और योगेश्वर को प्रणाम किया। फिर नृग ने प्रभु की परिक्रमा की, उनके चरणों में सिर रखा और उनकी अनुमति से एक दिव्य विमान पर चढ़ गए, और सब लोग उन्हें ऊपर उठते देखते रहे।



प्रार्थना अर्पित कर और प्रभु के चरणों में सिर रखकर नृग श्रीकृष्ण की अनुमति से दिव्य विमान पर चढ़ते हैं और सबकी आँखों के सामने देवलोक की ओर उठते हैं।

श्रीकृष्ण का यदुवंशियों को उपदेश

राजा के चले जाने पर देवकीनन्दन श्रीकृष्ण — ब्राह्मणों के प्रेमी और स्वयं मनुष्य-रूप धर्म — अपने जनों की ओर मुड़े, और राजधर्म धारण करने वालों की शिक्षा के लिए जो देखा था उस पर बोले।



राजा के चले जाने पर श्रीकृष्ण अपने जनों की ओर मुड़ते हैं और सिखाते हैं कि ब्राह्मण का धन ऐसा विष है जिसका पृथ्वी पर कोई उपचार नहीं, और भूल करने पर भी ब्राह्मण का सम्मान करना चाहिए।

उन्होंने कहा कि ब्राह्मण का थोड़ा-सा भी धन, यदि अन्याय से लिया जाए, तो अग्नि-सा तेजस्वी पुरुष भी उसे पचा नहीं सकता — फिर उस राजा की क्या बात, जो अहंकार से स्वयं को स्वामी मानता है। फिर उन्होंने वे शब्द कहे जो इस अध्याय की धार हैं।

नाहं हालाहलं मन्ये विषं यस्य प्रतिक्रिया ।

ब्रह्मस्वं हि विषं प्रोक्तं नास्य प्रतिविधिर्भुवि ॥ ३३ ॥

nāhaṁ hālāhalaṁ manye viṣaṁ yasya pratikriyā brahma-svaṁ hi viṣaṁ proktaṁ nāsyā pratividhir bhuvī

अर्थ: मैं हलाहल को विष नहीं मानता, क्योंकि उसका उपचार है; ब्राह्मण का धन ही वास्तविक विष कहा गया है, क्योंकि संसार में उसका कोई प्रतिकार नहीं। (स्कन्ध 10, अध्याय 64, श्लोक 33)

उन्होंने आगे कहा कि विष केवल खाने वाले को मारता है और आग जल से बुझ जाती है; किन्तु ब्राह्मण के छीने हुए धन से उठी आग पूरे कुल को जड़ सहित जला देती है। स्वामी की अनुमति बिना भोगा गया धन तीन पीढ़ियों का नाश करता है; बलपूर्वक छीनकर भोगा गया धन पहले की दस और बाद की दस पीढ़ियों का। राजलक्ष्मी से अन्धे राजा ब्राह्मण-धन का लोभ करते हैं और नहीं देखते कि वे किस नारकीय गहराई में गिर रहे हैं। जो बड़े परिवार वाले उदार ब्राह्मणों की आजीविका छीनते हैं, वे अपने वंशजों सहित कुम्भीपाक नरक में उतने वर्ष पचते हैं जितने धूल-कण पीड़ितों के आँसुओं से भीगे हों। जो ब्राह्मण की जीविका छीनता है — चाहे स्वयं दी हो या किसी और ने — वह साठ हज़ार वर्ष विष्ठा का कीड़ा बनता है।

फिर श्रीकृष्ण ने अपना संकल्प स्पष्ट किया: ब्राह्मण का धन कभी उनके कोष में न आए। जो उसका लोभ भी करते हैं, उनकी आयु घटती है, वे शत्रुओं से हारते हैं, राज्य खोते हैं और भयंकर सर्प बनकर जन्म लेते हैं।

ब्राह्मण को नमन

फिर चेतावनी श्रद्धा की आज्ञा में बदल गई।

विप्रं कृतागसमपि नैव द्रुह्यत मामकाः ।

घ्नन्तं बहु शपन्तं वा नमस्कुरुत नित्यशः ॥ ४१ ॥

vipraṁ kṛtāgasam api naiva druhyata māmakāḥ ghnantaṁ bahu śapantaṁ vā namas-kuruta nityaśaḥ

अर्थ: हे मेरे स्वजनो, अपराध करने पर भी ब्राह्मण से कभी द्रोह मत करो; वह मारे या बार-बार शाप दे, तो भी उसे सदा नमस्कार करो। (स्कन्ध 10, अध्याय 64, श्लोक 41)

‘जैसे मैं दिन में तीन बार सावधानी से ब्राह्मणों को प्रणाम करता हूँ,’ उन्होंने कहा, ‘वैसे तुम भी करो। जो ऐसा न करेगा, उसे मैं दण्ड दूँगा।’ और उन्होंने आँखों के सामने के उदाहरण से शिक्षा पर मुहर लगा दी।

ब्राह्मणार्थो ह्यपहृतो हतरिं पातयत्यधः ।

अजानन्तमपि ह्येनं नृगं ब्राह्मणगौरिव ॥ ४३ ॥

brāhmaṇārtho hy apahr̥to hartāraṁ pātayaty adhaḥ ajānantam api hy enaṁ nṛgaṁ brāhmaṇa-gaur iva

अर्थ: छीना हुआ ब्राह्मण-धन छीनने वाले को नीचे गिरा देता है — जैसे ब्राह्मण की गौ ने इस नृग को गिरा दिया, यद्यपि यह जानता भी न था। (स्कन्ध 10, अध्याय 64, श्लोक 43)

द्वारकावासियों को इस प्रकार उपदेश देकर समस्त लोकों को पवित्र करने वाले भगवान् मुकुन्द अपने भवन को लौट गए।

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

1. प्रभु ने यह उद्धार राजाओं की शिक्षा के लिए रचा। श्रीकृष्ण पहले से जानते थे कि नृग गिरगिट-देह में क्यों हैं, फिर भी उन्होंने पूछा ताकि लोग राजा के ही मुख से सुनें, और बाद में शासकों की शिक्षा के लिए ही यदुवंशियों को सम्बोधित किया। एक भक्त का उद्धार हर सत्ताधारी के लिए पाठ बन गया: प्रभु के सेवकों के लिए नियत धन हमारे छूने का नहीं।
2. ब्राह्मण का धन निरुपाय विष है। हलाहल का उपचार है; हड़पे गए ब्राह्मण-धन का कोई नहीं।
3. अज्ञान परिणाम को नहीं मिटाता। नृग ने अनजाने में पाप किया, फिर भी श्रीकृष्ण उन्हें प्रमाण बनाते हैं कि ब्राह्मण के प्रति अनचाहा अपराध भी फल देता है।

4. पहले दुःख भोगना चुनो। यम के विकल्प देने पर नृग ने पुण्य-भोग से पहले पाप-भोग माँगा; जो आत्मा सुधार को सहज स्वीकारती है, वह शीघ्र शुद्ध होती है।

5. भक्ति स्मृति बचाती है। गिरगिट रूप में युगों तक नृग स्वयं को नहीं भूले, क्योंकि उन्होंने ब्राह्मणों की सेवा की थी और प्रभु-दर्शन की लालसा रखी थी।

6. भूल करने पर भी ब्राह्मण का सम्मान करो। प्रभु स्वयं दिन में तीन बार ब्राह्मणों को प्रणाम करते हैं और स्वजनों को भी ऐसी आज्ञा देते हैं, उसके प्रति भी जो मारे या गाली दे।

एक भक्तिमय चिन्तन

यहाँ हृदय को जो छूता है वह केवल एक सद्राजा का पतन नहीं, उसके उठाए जाने की रीति है। नृग ने तारों से अधिक गौएँ दीं, और एक भटकी गौ ने उन्हें गिरा दिया। हम इसे कठोर कह सकते हैं; नृग नहीं कहते। वे पहले दुःख माँगते हैं, कुएँ के लम्बे वर्षों में स्मृति थामे रखते हैं, और जब प्रभु का हाथ उन्हें छूता है तो अन्याय की नहीं, विस्मय की बात करते हैं — कि जिन्हें योगी देखने को तरसते हैं, वे उनके लिए सूखे कुएँ की तलहटी तक आ गए। उनकी प्रार्थना एक ही वस्तु माँगती है: उनका मन कृष्ण के चरणों में टिका रहे। शायद हमें दोनों पाठ एक साथ थामने हैं: पवित्र को काँपती सावधानी से छूओ, और जब चूक जाओ, तो भक्ति को स्मृति जीवित रखने दो, जब तक प्रभु स्वयं हाथ बढ़ाकर न उठा लें।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज जो कुछ पूरी तरह आपका न हो — धन, समय, श्रेय, किसी का विश्वास — उसे रखने से पहले पूछें कि वह सचमुच किसका है, नृग के झुंड की भटकी गौ को स्मरण करते हुए। यदि कुछ लौटाना हो, तो आज ही लौटा दें। फिर प्रभु के किसी भक्त के प्रति सम्मान का एक छोटा-सा कार्य करें। अन्त में नृग की भाँति प्रार्थना करें कि आप जहाँ भी हों, आपका मन प्रभु के चरणों में रहे, और धीरे-धीरे जपें: ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

उपसंहार

यह अध्याय एक राजा की अपार उदारता को उस अनजाने दोष के पास रखता है जिसने उसे गिराया, और प्रभु को स्वयं पाठ निकालने देता है। श्रीकृष्ण का हाथ नृग को पुनः स्थापित करता है, उनकी भक्ति उन्हें स्वर्ग ले जाती है, और यदुवंशी — और सब पढ़ने वाले — एक कठोर किन्तु कोमल आज्ञा पाते हैं: ब्राह्मण का धन कभी मत छूओ, और प्रभु के सेवकों को तब भी प्रणाम करो जब वे तुम्हारे साथ अन्याय करें। यह इतिहास हमें सजग और विनम्र रखे, और नृग की भाँति हमारा मन भी कृष्ण के चरणों में विश्राम पाए।

श्रीमद्भागवतम् का दिव्य ज्ञान हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जगाए।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

संदर्भ एवं आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, सम्पूर्ण), दशम स्कन्ध (उत्तरार्ध), अध्याय 64।
- श्रृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज्ञम • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन एवं अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, श्रद्धापूर्ण पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी एवं लिप्यन्तरण सहित दिए गए हैं और उनके अर्थ सारांश रूप में प्रस्तुत हैं। यह किसी एक प्रकाशक के सतत अनुवाद या टीका का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी प्रकाशक के संबंध या समर्थन का दावा नहीं किया गया है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-10-chapter-64-the-deliverance-of-king-nrigha-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम • कल्कि अवतार इंटरनेशनल • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट

